वर्तमान में गीता की प्रांसगिकता

प्रो. (डॉ.) सोहन राज तातेड़,

पूर्व कुलपति सिंघानिया विश्वविद्यालय, राजस्थान

श्रीमद्भगवद्गीता मानव मात्र का धर्म शास्त्र है। गीता भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करने योग्य है। यह भगवान श्रीकृष्ण के मुख से निःसृत वाणी है। मानव सृष्टि के आदि में भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से अविनाशी योग अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता जिसकी विस्तृत व्याख्या वेद और उपनिषद् है, विस्मृति आ जाने पर उसी आदि शास्त्र को भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन के प्रति पुनः प्रकाशित किया। गीता की प्रासंगिकता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आजकल न्यायालयों में गीता के ऊपर हाथ रखकर के शपथ दिलायी जाती है कि जो कुछ भी बोलूंगा सत्य बोलूंगा, सत्य के सिवाय कुछ नहीं बोलूंगा। गीता में ज्ञान, भक्ति और कर्म का लौकिकता और पारलौकिकता का अध्यात्म और व्यवहार का आत्मा और परमात्मा का जीव और ब्रह्म का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया गया है। गीता में बताये गये मार्ग को अपनाकर मानव अपना जीवन सुदृढ़ बना सकता है। गीता योग का बहुत ही सुन्दर ग्रन्थ है। यह एक प्रकार से योगमार्ग ही है। प्राचीन काल से ही भारतीयों ने यह अनुभव किया कि सत्य अनेक पक्षीय है और विविध धर्म अपने सिद्धान्त के अनुसार सत्य के भिन्न–भिन्न पहलुओं को लेकर प्रकट हुए है। विशुद्ध सत्य का प्रतिपादन कोई एक मत नही कर सकता। उपनिषदों में कहा गया है कि **'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'**। सभी धर्मों कि अपनी–अपनी मान्यताएँ होती हैं। धर्म और संप्रदाय में भी अन्तर है। जब धर्म को संप्रदाय में बाट दिया जाता है तो धर्म संकुचित हो जाता है। लोग उसकी मनमानी व्याख्या करते हैं। मूल रूप से मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। धर्म का आधार श्रद्धा और विश्वास है जबकि दर्शन का आधार तर्क और चिंतन। दोनो के द्वारा ही सत्य को खोजा जाता है। भारत में धर्म और दर्शन कभी एक नही रहे। दर्शन सदैव धर्म से अलग रहा। यही कारण है कि यहॉ पर दर्शन का स्वतंत्र विकास हुआ। चार्वाक, बौद्ध, जैन, गीता, सांख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त दर्शनों का आधार और पृष्ठ भूमि पृथक्–पृथक् रही है। धर्म आत्मविकास का साधन है। इसलिए इसे सबसे उत्कृष्ट कहा गया है। आत्मशोधन, आत्मस्वातंत्र और आत्म उन्नति का साधन धर्म है। धर्म के मूलतः दो भेद है–

पहला निवृत्त मूलक धर्म और दूसरा प्रवृत्त मूलक धर्म। आत्म संयम, असद् आचरण का प्रत्याख्यान यह निवृत्त मूलक है। राग द्वेष, प्रमाद आदि से रहित आचरण, स्वाध्याय, ध्यान, उपवास, सेवा, विनय, आदि निवृत्ति मूलक धर्म के लक्षण हैं। इसके अतिरिक्त जो कुछ भी आचरण किया जाता है। वह लौकिक प्रवृत्ति है, धर्म नहीं। वस्तुतः ज्ञान दर्शन, चारित्र तप जो कि मोक्ष मार्ग के साधन है धर्म कहलाते हैं। संसार में भौतिक उन्नति प्राप्त करने के लिए जो स्पर्धा देखी जाती है वह मूलतः प्रवृति मूलक और अशांति को बढाने वाली होती है। राग–द्वेष संसार को बढाने वाला होता है। जहां पर सबलों का पोषण और निर्बलों का शोषण होता है वहां धार्मिक सहिष्णुता नहीं हो सकती। धर्म लौकिक कर्तव्य से भिन्न होता है। प्रायः मानव यह सोचता है कि उसके द्वारा जो कुछ किया जाता है वही धर्म है किन्तु ऐसी बात नही। शास्त्रानुकूल आचरण ही धर्म है। धर्म मोक्षाभिमुख होता है और लौकिक कर्तव्य संसाराभिमुख होता है। धर्म का लौकिक कर्तव्य से भेद सुस्पष्ट है। कृषि, वाणिज्य, व्यापार आदि कार्य केवल लोक प्रर्वतन के लिए है। मूल रूप से जिस कार्य में आत्मोन्नति हो वही धर्म है। धर्म तो मूलतः आत्म विकस ही है। संप्रदाय विशेष की दृष्टि से इसके अनेक भेद है जैसे वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म इत्यादि। प्रायः धर्म तो अंहिसा ही है इसमें सभी धर्म एक मत है किन्तु जब इसकि सांप्रदायिक दृष्टि से व्याख्या की जाती है तो वह ठीक नही है। जो मैं मानता हूं वही श्रेष्ठ है इस प्रकार की भावना श्रेष्ठ नहीं है। प्रायः देखा यह जाता है कि धर्म कि जो व्याख्या सांप्रदायिक रूप से की जाती है वह ठीक नहीं है। मार्ग भले ही भिन्न–भिन्न हो किन्तु उद्देश्य कि सब में समानता है। यदि सभी विचार पद्धतियों में एकता हो तभी धार्मिक सहिष्णुता की संभावना हो सकती है। **गीता** में सर्वे भवन्तु सुखिनः का सिद्धान्त लोक कल्याण का सिद्धान्त है। इसमें लोकहित की कामना की गयी है। गीता में आत्मा और शरीर की भिन्नता का बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। आत्मा अजर, अमर और शिव और शाश्वत है जबकि शरीर नश्वर। गीता में अनासक्ति भाव का उपदेश दिया गया है। जैसे– कमल कीचड़ में खिलता है लेकिन कीचड़ से निर्लिप्त रहता है वैसे ही मानव को इस संसार में रहना चाहिए। गीता में निर्हंकारता का भी बहुत सुन्दर वर्णन किया गया है। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते है कि जो मनुष्य सभी कर्मों को मुझमें अर्पित कर देता है उसे कर्म का

दोष नहीं लगता। गीता में लोकसंग्रह का उपदेश दिया गया है। ज्ञान भक्ति और कर्म का सुन्दर समन्वय किया गया है। सदाचार का उपदेश पदे–पदे गीता में दिखलाई देता है। गीता में वर्णाश्रम व्यवस्था का आधार गुण और कर्म को बतलाया गया है, जाति को नहीं। गीता में जो चारों वर्णों और आश्रमों का विभाजन किया गया है और उनके जो कर्त्तव्य कर्म बतलाये गये हैं, उसका एकमात्र लक्ष्य सामाजिक सुव्यवस्था और व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक क्षमता का क्रमशः विकास ही है। उसमें प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को उसकी प्रवृत्ति, योग्यता और क्षमता के अनुसार ही काम करने की प्रेरणा दी गयी है, जिससे समाज की व्यवस्था निर्बाध रूप से संचालित हो सके। यही गीता की सबसे अधिक प्रासंगिकता है।